अध्याय-4

दुष्यंत कुमार की कविता में व्यंग्य

1. व्यंग्य
2. व्यंग्य का उद्देश्य
3. राजनीतिक व्यंग्य
4. सांस्कृतिक व्यंग्य
5. साहित्यिक व्यंग्य

सन्दर्भ-सूची

स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक परिवेश से उपजी विडंबना और विसंगति के कारण भारतीय समाज में व्याप्त मानवीय मूल्य और आदर्श हाशिए पर चले गये। आजादी के पश्चात् राजनीति सत्ता–लिप्सा, अवसरवादिता और भाई–भतीजावाद का पर्याय बन गया। 'रामराज्य' का सपना दिखाकर जनता की सहानुभूति प्राप्त करनेवालों ने सत्तासीन होते ही 'रावण-राज्य' के दर्शन करा दियें। गांधीजी के 'हरिजनों' को हरि के भरोसे छोड़ दिया गया। समाजवाद के नाम पर जनता को भरमाकर 'पूँजीवादी समाजवाद' लाया गया और पूँजीपतियों को प्रसन्न किया गया। वह ऐसा समय था, जब आम–जन की आशा-आकांक्षाएँ, उनकी मूलभूत जरूरतें राजनेताओं की स्वार्थ-सिद्धि के आगे होम कर दी जा रही थीं। आजादी उपरांत तथाकथित अपनों द्वारा आम-जन का जो शोषण हुआ, जिस तरह से उनकी भावनाओं को छला गया, उनके अधिकारों का हनन किया गया, उससे आमजन में भारतीय राजनीति और राजनेताओं के प्रति गहरा क्षोभ और आक्रोश उत्पन्न हुआ। फलतः समाज में मोह भंग की स्थिति आ गई। राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य पर जो उथल-पुथल मची हुई थी, उसने तत्कालीन जन प्रतिबद्ध रचनाकारों को आन्दोलित किया। आमजन से जुड़े हुए रचनाकारों के लिए समाज की यह दुर्दशा स्वीकार्य नहीं हुई। फलतः उन्होंने प्रतिक्रिया जाहिर की। आक्रोश और विद्रोह की अभिव्यक्ति में इन कवियों का स्वर प्रहारात्मक हो गया, जिसे व्यंग्य कहा गया। आरम्भ में व्यंग्य का प्रयोग एक शैली के रूप में होता था, पर वर्तमान

समय में यह साहित्य की एक स्वतंत्र और प्रमुख विधा है । स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में सामाजिक यथार्थ अंकन को बल मिलने के साथ ही व्यंग्य प्रचलित होने लगा । व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक यथार्थ सशक्त ढ़ंग से अनावृत्त हो पाता है । अत: कहा जा सकता है कि व्यंग्य सामाजिक यथार्थ को प्रकट करने के लिए अनिवार्य हैं ।

1. व्यंग्य

विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने ढ़ंग से व्यंग्य को परिभाषित किया है । आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी में व्यंग्य के बारे में लिखा हुआ है –"व्यंग्य वह पद्य अथवा गद्य-रचना है जिसमें प्रचलित दोषों अथवा मूर्खताओं का, कभी-कभी कुछ अतिरंजना के साथ मजाक उड़ाया जाता है । इसका अभीष्ट किसी व्यक्ति-विशेष अथवा व्यक्तियों के समूह का उपहास करना होता है ; अर्थात, जो एक व्यक्तिगत आक्षेप-लेख के समान होता है ।"[1] इस परिभाषा के अनुसार व्यंग्य वह विधा है जिसमें हँसी-मजाक द्वारा गलती की आलोचंना की जाती है । हास्य व्यंग्य का एक गुण है और यह आक्रोश को व्यक्त करने का धारदार तरीका भी है ।

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी व्यंग्य के बारे में लिखते हैं –"व्यंग्य वह है, जहाँ कहनेवाला अधरोष्ठों में हँस रहा है और सुननेवाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहनेवाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो

जाता हो ।''[2] द्विवेदीजी मानते हैं कि व्यंग्य में ऐसी प्रहारात्मक शक्ति होनी चाहिए कि जिसपर प्रहार किया गया हो वह असहाय और निरूत्तर हो जाए । उनकी दृष्टि में सार्थक व्यंग्य वही है, जिसकी चोट नासूर बनकर हमेशा आत्मा को कचोटती रहे ।

हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई व्यंग्य को परिभाषित करते हुए लिखते हैं – ''व्यंग्य जीवन से साक्षात्कर कराता है, जीवन की आलोचना करता करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखण्डों का परदाफाश करता है ।''[3] परसाईजी मानते हैं कि व्यंग्य के माध्यम से समाज की समीक्षा बेहतर ढ़ंग से हो पाती है । व्यंग्यकार आलोचनात्मक रवैया अपनाते हुए समाज में सामान्य-सी दिखने वाली परिस्थितियों के मूल में छिपे शोषण और विसंगति को उघारकर हमें समाज का वास्तविक चेहरा दिखाने का कार्य करता है । व्यंग्य हमारी चेतना को उद्‌बुद्ध कर हमें हमारी सामाजिक जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक और सचेत करता है ।

भवेश कुमार महतो 'व्यंग्य वार्ता' पत्रिका में प्रकाशित अपने एक आलेख में लिखते हैं – ''व्यंग्य विद्रूपताओं से उपजता है । चेतना के लिए बात करता है । परिस्थिति को सचित्र दिखाने का कार्य करता है ।''[4] भवेश कुमार महतो मानते हैं कि व्यंग्य हमें चेतनाशील बनाता है ।

बेढब बनारसी व्यंग्य के संबंध में लिखते हैं – ''जब किसी व्यक्ति

या समाज की बुराई या न्यूनता को सीधे शब्दों में न कहकर उल्टे या टेढ़े शब्दों में व्यक्त किया जाता है तब व्यंग्य की सृष्टि होती है ।"[5]

सुवास कुमार व्यंग्य में 'शिकारी या खोजी कुत्ता' की विशेषताओं को देखते हैं –"व्यंग्य समय की सारी जटिलताओं की सरल पहचान कराता है, कुछ वैसे ही, जैसे शिकारी या खोजी कुत्ता अपराध–स्थल को सूंघकर अपराधी का ठीक सुराग लगा लेता है । इस तरह व्यंग्य का अनिवार्य रिश्ता समय और समाज की गड़बड़ियों से होता है । व्यंग्यकार गड़बड़ियों से टकराता तो वर्तमान में ही है मगर वर्तमान के उलझे सूत्रों को सुलझाते हुए भूत-भविष्य से भी निरंतर 'संवाद' स्थापित करता रहता है ।"[6] आलोचक यहाँ व्यंग्य को परिभाषित करते हुए उसके कार्यों की व्याख्या करते हैं । व्यंग्य मूलत: समाज के प्रति व्यंग्यकार की घनिष्टता का परिचायक है । व्यंग्य के द्वारा परिस्थितियों का मूल्यांकन भूत-भविष्य और वर्तमान तीनों सन्दर्भ में किया जा सकता है । खोजी प्रवृति व्यंग्य की सर्वप्रमुख विशेषता होने की वजह से समस्या और विसंगतियों के मूल में छिपे हुए कारण परत-दर-परत उघड़कर प्रत्यक्ष हो जाते हैं ।

मेरिडिथ व्यंग्यकार के बारे में लिखते हुए उसके कार्यों पर विचार करते हैं – "व्यंग्यकार नैतिकता का ठेकेदार होता है । बहुधा वह समाज की गन्दगी की सफाई करने वाला होता है । इसका कार्य सामाजिक विकृतियों की सफाई करना होता है ।"[7] (The satrist is a moral agent, often a social

seavenger working on a storage of Biles) मेरिडिथ मानते हैं कि व्यंग्य के माध्यम से समाज में विसंगति, मिथ्याचारण, व्यभिचार, असामंजस्य, जो भी अनीतिपूर्ण आचरण कार्य करते हैं, वह परिष्कृत हो जाता है । व्यंग्य नीति का समर्थक होता है । वह रेचक की तरह कार्य करता है इसीलिये उसका निशाना हमेशा सामाजिक विकृति फैलाने और अनैतिक कार्य करनेवाले व्यक्ति ही होते हैं ।

ए. निकोल व्यंग्य के तीखेपन और आक्रामक रवैये को केंद्रित करते हुए लिखते हैं – "व्यंग्य बहुत तीखा वार करता है । इसमें कोई नैतिक बोध नहीं होता । इसमें दया, विनम्रता एवं उदारता का लेशमात्र भाव भी नहीं होता । व्यक्ति के शारीरिक गठन पर कभी–कभी पूरी निर्दयता से प्रहार करता है, यह व्यक्तियों के चरित्र पर आक्रमण करता है । यह युग की समूची परिस्थितियों की धज्जियाँ किसी को भी क्षमा किये बगैर उड़ाता है ।"[8] आलोचक का मानना है कि व्यंग्य की प्रवृति प्रहारात्मक होती है । प्रहार व्यंग्य का सर्वप्रमुख कार्य है । व्यंग्य का स्वरूप कठोर होता है क्योंकि व्यंग्य विसंगतियों की उपज होती है ।

इसी तरह सदरलैंड व्यंग्यकार को न्यायधीश के पद पर बैठाते हुए लिखते हैं –"व्यंग्यकार का कार्य न्यायधीश की भाँति न्याय-पालन कराने का तथा शिष्ट समाज की मर्यादाओं की रक्षा करना है । उसका कार्य नर-नारियों को नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक, एवं अन्य कसौटियों पर खरे उतरने के लिए सचेत करने का है ।"[9] प्रो. सदरलैंड व्यंग्य के सामाजिक परिप्रेक्ष्य की ओर इंगित करते हैं । व्यंग्य

व्यक्ति के विवेक को जागृत कर उसे सही और गलत का भेद करना सिखाता है । इसकी टीस व्यक्ति को झकझोर कर रख देती है ।

समग्रत: व्यंग्य रचनाकार की सामाजिक चिंता से निसृत: एक प्रतिबद्ध भावना है । यह मानवतादी रचनाकार के लिए वह सृजनात्मक हथियार है, जिसके द्वारा वह समाज में निहित मानव-विरोधी प्रश्नों पर गम्भीरता से विचार करता है और हमें भी गम्भीरता से विचार करने के लिए बाध्य करता है । व्यंग्य अनावृत्त सत्य को सहजता से आवृत करने में समर्थ हैं । व्यंग्य की सृष्टि तभी होती है, जब रचनाकार व्यक्ति और समाज के साथ हुए अन्यायों को स्वयं गहराई से महसूस करता है और उसे दूर करने के लिए कटिबद्ध होता है । अत: यही कहा जा सकता है कि व्यंग्य मूलत: मानवीय दृष्टि है । उसका ध्येय और प्रदेय केवल और केवल समाज की इकाई मनुष्य की बेहतरी है ।

2. व्यंग्य का उद्देश्य

व्यंग्य मूलत: विसंगति और विडंबनाओं की उपज होता है । समाज में जो भी अंतर्विरोध, विसंगति और विडंबना व्याप्त है, उस पर आक्रोश और विद्रोह प्रकट करने का सबसे सशक्त माध्यम व्यंग्य ही है । व्यंग्य में टीस पैदा करने की अद्‌भुत शक्ति होती है । उसकी इसी शक्ति के द्वारा रचनाकार अपनी बेलाग प्रतिक्रिया का स्वर सशक्त कर पाता है । व्यंग्य का मूल उद्देश्य अपने समय के

यथार्थ को प्रकट करना है । इस सन्दर्भ में विनोद तिवारी का कथन उद्धृत है– "व्यंग्य की सबसे बड़ी ताकत होती है वह यह है कि उसके द्वारा परम्परा, रूढ़ि, अंधविश्वास, छल, छद्म, मूर्खता आदि को उद्घाटित करने के लिए विडम्बना, हास, उपहास, कटूक्ति का सहारा लिया जाता है । X X X यथार्थ के निर्मम उघाड़ के लिए व्यंग्य जैसी सशक्त प्रविधि दूसरी हो ही नहीं सकती ।"[10]

मदालसा व्यास का मानना है –"यह एक ऐसी विधा है, जो अपनी अभिव्यक्ति से ऐसे–ऐसे कार्य सम्पन्न कर सकती है जो अन्य विधाओं द्वारा सम्भव नहीं ।"[11]

सुवास कुमार तो सभी श्रेष्ठ रचनाओं को व्यंग्य मानते हैं -- "व्यंग्य श्रेष्ठतम लेखन की आंतरिक प्रकृति होता है । श्रेष्ठ रचना चाहे वह किसी भी विधा में क्यों न हो, अनिवार्यत: और अंतत: व्यंग्य होती ही है ।"[12]

रचनाकार जब भी समाज में कुछ असंगत, अनुचित, अव्यवस्थित और अन्यायपूर्ण होता हुआ देखता है, तो उसके दिलो-दिमाग में हलचल मच जाती है । उसकी वाणी तब तल्ख का रूप ग्रहण कर लेती है । राधेमोहन शर्मा लिखते हैं– "कवि व्यंग्य का प्रयोग तब करता है जब उसका हृदय बाह्य और आंतरिक विसंगतियों से विलोड़ित हो उठता है । व्यंग्य के द्वारा अर्थगत प्रहार होता है । व्यंग्य की मूल चेतना यही है ।"[13]

सूर्यकांत नागर व्यंग्य के उद्देश्य के बारे में लिखते हैं –"व्यंग्य का काम सामाजिक बुराईयों की आलोचना कर समाज को शिक्षित करना है, ताकि

विसंगतियों-विषमताओं के विरूद्ध एक वाजिब गुस्सा पैदा हो । इस दृष्टि से व्यंग्य आलोचनात्मक यथार्थ है । एक तरह की सामाजिक प्रतिबद्धता । इसमें जनहित की भावना निहित है ।''[14] किसी भी संवेदनशील और जन-प्रतिबद्ध रचनाकार के लिए समाज की दुर्दशा देखकर चुप रहना कठिन ही नहीं, नामुमकिन होता है । उसके हृदय का आक्रोश अभिव्यक्ति के लिए छटपटाने लगता है और इसी क्रम में उसका स्वर व्यंग्यात्मक हो उठता है । व्यंग्य सही अर्थों में रचनाकार की सक्रियता का प्रमाण है । वह सक्रियता जिसके सहारे वह घुटनशील समाज पर आलोचनात्मक प्रहार करता है ।

व्यंग्य समस्या का समाधान भी है । स्मिता चिपलूणकर लिखती है– ''व्यंग्य के आईने में व्यक्ति तथा समाज अपने आपको देख सकता है तथा अपनी कुरूपताओं, विकृतियों को स्पष्ट देखकर उससे मुक्त होने का प्रयत्न कर सकता है ।''[15] ऊपर से साफ-सुथरा और मानवीय दिखनेवाला समाज भीतर से कितना घिनौना और अमानवीय है, यह व्यंग्य के द्वारा ही सटीक ढ़ंग से व्यक्त हो पाता है । रचनाकार समाज के इस वीभत्स अनावृत्त सच की ओर व्यंग्यात्मक तरीके से हमारा ध्यान आकर्षित कर हमें जागरूक करता है । यह समाज में बदलाव लाकर, एक बेहतर समाज के निर्माण के लिए हमें प्रेरित करता है । हमारी चेतना को जगाना व्यंग्य का मूल ध्येय है ।

दुष्यंत कुमार मानते हैं कि व्यंग्य का स्वाद नीम की तरह कसैला

होता है । स्वाद में कसैला होकर भी यह अत्यंत प्रभावकारी है । जिस तरह नीम शारीरिक विकृतियों को दूर करने में सहायक है, उसी तरह व्यंग्य सामाजिक विकृतियों को दूर करने में सहायक होता है । कवि लिखते हैं – "एक नीम का स्वाद मेरी भाषा बना, जो सिर्फ तल्खी का नाम है ।"[16]

दुष्यंत कुमार के सृजन-संसार में व्यंग्य का व्यापक स्वरूप दिखाई पड़ता है । आरम्भ से ही उनके हृदय में अन्याय, अत्याचार, विसंगति, असमानता आदि देखकर विक्षोभ उत्पन्न होता रहा है । आम जन की पीड़ा, उत्तेजना, अभाव, बेबसी, घुटन को कवि करीब से देखते हैं, उनके साथ तादात्मय स्थापित करते हैं, उनकी पीड़ा को महसूस करते हैं और पाते हैं कि समाज का रवैया आम-जन के प्रति अत्यंत क्रूर है । समाज का क्रूर रवैया उनके भीतर विद्रोह की वृत्ति को जन्म देता है । 'जलते हुए वन का वसंत' संग्रह की भूमिका में वे लिखते हैं – "मेरे लिए मनुष्य-मात्र की अवमानना सबसे अधिक कष्टप्रद है । उस पर मेरी प्रतिक्रिया नितांत व्यक्तिगत ढ़ंग से होती है ।"[17] कवि के लिए प्रत्येक जनविरोधी स्थिति असहनीय है । वे अपनी सृजनशीलता को आम जन के पक्ष तथा शोषक वर्ग के विपक्ष में खड़ा करते हैं –

" मुझमें रहते है करोड़ो लोग चुप कैसे रहूँ ,
हर गज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है ।"[18]

विजय बहादुर सिंह कवि दुष्यंत के बेलागपन को देखकर उन्हें 'दुःसाहसी कवि' सम्बोधित करते हैं । सामाजिक प्रतिबद्धता से निष्पन्न उनका यह दुःसाहस उनकी रचनाओं में पराकाष्ठा पर हैं । चाहे राजनीतिक विसंगति हो, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक या फिर साहित्यिक विसंगति, कवि ने बेखौफ और बेलाग तरीके से उसपर प्रहार किया है । देखा जाए तो दुष्यंत कुमार कबीर, निराला और नागार्जुन जैसे निर्भय व्यंग्यकारों की परम्परा की अगली कड़ी है । यहाँ कवि दुष्यंत कुमार के काव्य में निहित व्यंग्य के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक सन्दर्भों पर अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

3. राजनीतिक व्यंग्य

राजनीतिक गलियारों से दुष्यंत कुमार अच्छी तरह वाकिफ थे । रेडियो की नौकरी के दौरान दुष्यंत का बावास्ता कई राजनेताओं और सरकारी अधिकारियों से पड़ा । उनसे साक्षात्कार के दौरान कवि उनके दोहरे व्यक्तित्व से बखूबी परिचित हुए । दुष्यंत ने देखा कि आम जन के प्रति राजनेताओं की संवेदनशीलता और सहानुभूति अपने 'वोट बैंक' को बढ़ाने का कूटनीतिक चाल मात्र है । कोई भी राजनेता जनता के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को लेकर गम्भीर नहीं हैं । उनके लिए कुर्सी पर बैठने का मूल ध्येय है – अपनी आंकाक्षाओं को किसी भी सूरत में पूर्ण करना । दुष्यंत कुमार को किसी भी पार्टी से कोई विशेष

लगाव नहीं रहा क्योंकि वे देख रहे थें कि राजनीति के शीर्ष पर वही लोग विराजमान है, जो मानवता के पद से नीचे आ चुके हैं । इस सियासी रूप पर दुष्यंत लिखते हैं –

" मस्कहत आमेज होते हैं, सियासत के कदम
तू न समझेगा सियासत, तू अभी इंसान है "[19]

कवि आज के मनुष्य के प्रति प्रतिबद्ध है । उन्होंने लिखा भी है – "मैं प्रतिबद्ध कवि हूँ .... यह प्रतिबद्धता किसी पार्टी से नहीं, आज के मनुष्य से है ।"[20] इस सन्दर्भ में धर्मवीर भारती का विचार प्रस्तुत है –"प्रेमचन्द की तरह वे मानते थे कि साहित्य राजनीति और सभ्यता के आगे चलने वाली मशाल है, न कि उसका पालतू अनुचरत्व । इसीलिए उन्होंने अपनी चेतना को कभी किसी पार्टी या संगठन के पास न तो गिरवी रखा, न ही किसी के प्रति अपने पूर्वाग्रह पाले । विपरीत इसके उन्हें जहाँ भी मनुष्यता संकटग्रस्त दिखी, उसके कारणों में गये, मनन चिंतन किया और चिन्हित शत्रुओं को रेखांकित कर अवाम को सावधान और जागरूक किया ।"[21]

दुष्यंत इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं थे कि राजनीतिज्ञ चाहे किसी भी विचारधारा के समर्थक क्यों न हो, जनता के प्रति उनकी सच्ची संवेदना भाषणों तक ही सीमित रहती है । जनता की भलाई के लिए किए गये सारे प्रण भाषण समाप्ति के पश्चात् हवा में विलीन हो जाते हैं । जनता झूठी आशा और हमदर्दी

लेकर घर वापस लौट जाती है और नेता अपनी जीत पर अट्टहास करता हुआ जनता को भरमाये रखने की नई नीति तैयार करने में व्यस्त हो जाता है। लेखन के आरंभिक दौर में लिखी गई एक अधूरी कविता 'क्यों अपने प्रण को भूल गये' में कवि झूठे वायदों से भोले–भाले मजदूरों को बहलाने वाले नेताओं की अच्छी खबर लेते हैं –

"हम सोशलिस्ट है, भारत में
मजदूर राज्य दिखला देंगे
पूँजीपतियों के छीन सभी
आसन, किसान बिठला देंगे
हैं तोड़ दिए सब नियम आज
जो कभी बनाए बापू ने
हैं छोड़ दिए सब मार्ग आज
जो कभी दिखाए बापू ने
क्या यही स्वराज्य, हमारा है
जिसके हित 'शेखर' चले गए
श्री वीर बोस और भगत सिंह
अभिलाषा लेकर चले गए
क्यों अपने प्रण को भूल गए
जो किए कभी मजदूरों से।"[22]

चुनाव पूर्व अपने वोट बैंक को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए नेतागण कई मनमोहक योजनायें लेकर वोटर के सामने यकायक अवतरित हो जाते हैं । उनकी योजनाओं में आम जन की दारूण व्यथा को कम करने का 'जादुई मरहम' रहता है । ताजुब्ब की बात यह है कि सत्तासीन होते ही इस 'जादुई मरहम' की डेट अनायास 'एक्सपायर' हो जाती है । सच तो यह है कि राजनीति में भ्रष्टाचार इस कदर फैल चुका है कि योजनाएँ या तो अपने गंतव्य (सामान्य जनता) तक पहुँचने से पहले ही सरकारी कार्यालय की फाइलों में घुटकर दम तोड़ देती है या उसकी दिशा बदलकर अंततः पूँजीपति और नेताओं को ही लाभांवित किया जाता है । 'नदियों के ठहराव' और 'पानी के सुखने' जैसे बिम्ब के माध्यम से कवि दुष्यंत इन भ्रष्ट नेताओं की चालाकियों पर व्यंग्य कसते हैं –

" यहाँ तक आते-आते सूख जाती है नदियाँ
मूझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा होगा ।"[23]

कवि मानते हैं कि समाज में व्याप्त अव्यवस्था, भूख, गरीबी, बेरोजगारी आदि के मूल में इन राजनेताओं की स्वार्थपरता ही है । जिस सरकारी धन का उपयोग इन समस्याओं को मिटाने के लिए होना चाहिए, उसका उपयोग राजनेताओं के भोगवाद को तुष्ट करने के लिए किया जा रहा है । इस अराजकता के कारण ही आम जन अपनी मूलभूत जरूरतों को पूरा करने के लिए संघर्ष करने

को विवश है । आजादी उपरांत की गरीबी पर दुष्यंत कुमार आक्रोश व्यक्त करते हुए लिखते हैं –

" इस कदर पाबन्दी–ए–महजब कि सदके आपके
जब से आजादी मिली है मुल्क में रमजान है ।"[24]

दुष्यंत कुमार के राजनीतिक व्यंग्य में एक तीव्र आक्रोश सहज दृष्टिगत है । उनका राजनीतिक व्यंग्य सीधे–सीधे आघात करनेवाला है । उसका नुकीलापन चुभाने की अद्‌भुत क्षमता रखता है । जिसका श्रेष्ठ उदाहरण आपातकालीन समय में लिखी गई रचनाएँ हैं । आपातकालीन तानाशाही के उस दौर में सत्ता के विपक्ष में बोलना अपने लिए खतरा मोल लेना था । ऐसी संकट की स्थिति में दुष्यंत चुपचाप हाथ बाँधकर कलम को विराम देकर सत्ता के सम्मुख नतमस्तक होने के बजाए प्रतिवाद का बिगुल बजाते हैं । वे तमाशाबीनों पर आक्रामक प्रहार करते हैं –

" मैं बेपनाह अंधेरे को सुबह कैसे कहूँ ,
मैं इन नजारों का अंधा तमाशबीन नहीं । "[25]

जिस आपातकाल में कवि और पत्रकार को पंगु बनाया जा रहा, उसी समय में कवि दुष्यंत अपना स्वर तेज करने में लगे हुए थें –

" यह जुबा हमसे सी नहीं जाती
जिन्दगी है कि जी नहीं जाती ।"[26]

आपातकालीन समय में लिखा गया शेर –

" एक बूढ़ा आदमी है मुल्क में या यों कहो –
इस अंधेरी कोठरी में एक रोशनदान है ।"[27]

ने तत्कालीन सत्तासीन सरकार को हिलाकर रख दिया था । एक सरकारी कर्मचारी होकर इस तरह की मुखर अभिव्यक्ति कवि के लिए काफी महँगी पड़ सकती थी । कवि से जवाब तलब किया गया । पर दुष्यंत के चालाकी भरे जबाव के समक्ष सरकार निरूत्तर हो गयी । आपातकाल के जनविरोधी राजनीति और निरंकुश शासन व्यवस्था पर कवि ने बहुत कुछ लिखा है । अपने समकालीन सृजनकारों में दुष्यंत कुमार ही मुखर रूप से आपातकालीन तानाशाही पर व्यंग्य करते हैं । उनका मानना था कि आपातकाल लगाकर तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने मानवाधिकार और जनतांत्रिक मूल्यों पर आघात किया है । 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' हमारा मौलिक अधिकार है, उस अधिकार से वंचित करके का सीधा मतलब हुआ तानाशाही का प्रदर्शन करना । लोकतंत्र में तानाशाही की जगह नहीं होती । वे इन्दिरा गांधी द्वारा दिखाये गए समृद्धि और विकास के सब्जबाग पर चुटीला प्रहार करते हैं –

" रोज अखबार में पढ़कर ये ख्याल आया हमें
इस तरफ आती तो हम भी देखते फस्ले बहार ।"[28]

दुष्यंत कुमार ने अपनी कई रचनाओं में तत्कालीन शासन–व्यवस्था की कटु आलोचना की है । इन्दिरा गांधी को सम्बोधित करते हुए वे शासन व्यवस्था की धज्जियाँ उड़ा देते हैं –

" रौनके जन्नत जरा भी मुझको रास आई नहीं,
मैं जहन्नुम में बहुत खुश था मेरे परवरदिगार ।"[29]

आपातकाल में दुष्यंत कुमार द्वारा अपनाए गये आक्रामक तेवर के संबंध में कमलेश्वर लिखते हैं – "उसकी गज़लें समय और समाज के सतत साहित्यिक पहरेदार की तरह लोकतांत्रिक सरहदों की निगहबानी भी करती रहीं, ताकि राजनीतिक तानाशाही ताकतें जनता के मानवीय और जनतांत्रिक अधिकारों, मर्यादाओं का अतिक्रमण न कर पाएँ । मैं नहीं समझता कि मानवाधिकार और जनतंत्र के मूल्यों पर मंडराते खतरों से रक्षा करने का इतना अहंम् ऐतिहासिक क्षण किसी पुरातन या आधुनिक कवि के सामने आया हो । यहाँ तक कि विद्रोही कवि नागार्जुन भी भ्रमित रहे, लेकिन दुष्यंत कुमार ने उस आपातकालीन आपदा और खतरे का जिस तरह शब्द की शक्ति से सामना किया, वह उसे हिन्दी कविता की विद्रोह–मानवीय परम्परा की सारणी में एक जलती मशाल की तरह स्थापित करती है और वह मशाल आज भी हमें रोशनी दे रही है । निराला, मुक्तिबोध, अज्ञेय ने स्वतंत्रता के पच्चीस साल बाद आए इस तरह के आपातकाल का सामना नहीं किया था, विरोध करते भ्रमग्रस्त नागार्जुन के बिखरे हुए नुकीले शब्दों के होते हुए

भी, दुष्यंत ने अकेले दम प्रतिरोध और परिवर्तन की आकांक्षा की एक बड़ी भूमिका तैयार की थी ।''[30] आलोचक की मान्यता है कि दुष्यंत कुमार आपातकालीन समय में जिस साहस के साथ व्यवस्था से सीधे–सीधे मुठभेड़ करते हैं, वह साहस उस समय के बड़े-बड़े जन कवि नहीं कर पाये । तानाशाही व्यवस्था के समक्ष अपने कलम को विराम देकर तमाशबीन बनना, जन-प्रतिबद्ध कवि दुष्यंत को गँवारा नहीं था । कवि राजनेताओं की चालाकी देखकर समझ गये थें कि ये लोग बदलने वाले नहीं है । 'लफ्जों से' इन्हें नहीं समझाया जा सकता इसीलिए वे हंगामा खड़ा करना चाहते हैं ताकि जनता की आवाज इन तथाकथित जन-उद्धारकों तक पहुँच जाये –

'' पक गई है आदतें, बातों से सर होगी नहीं ,
कोई हंगामा खड़ा करो, ऐसे गुजर होगी नहीं ।''[31]

दुष्यंत कुमार की कविताएँ भ्रष्ट राजनीति में लोकतंत्र की दयनीय स्थिति पर प्रहार करती है । लोकतंत्र में जनता ही सर्वेसर्वा होता है, किंतु राजनेताओं की स्वार्थपरता ने लोकतंत्र के स्वरूप को विकृत कर दिया । आमजन को उनकी दयनीय स्थिति से मुक्ति दिलाने के लिए प्रतिबद्ध लोकतंत्र ने आमजन को संकट की स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया है । लोकतंत्र के जरिये आमजन को दबाने का कुचक्र रचा जा रहा है । इसीलिए दुष्यंत कुमार लोकतंत्र पर लिखते हैं –

" तेरी जुबान है झूठी जम्हूरियत की तरह ,
तू एक जलील-सी गाली से बेहतरीन नहीं ।"[32]

पूँजीपोषित लोकतंत्र में आमजन की स्थिति 'झुनझुने' की तरह है, जिसे इच्छानुसार बजाया जाता है –

" जिस तरह चाहो बजाओ इस सभा में
हम नहीं हैं आदमी, हम झुनझुने हैं ।"[33]

इस सन्दर्भ में निर्मल वर्मा के विचार उल्लेखनीय है –"जहाँ लोकतंत्र यदि एक हाथ से स्वीधानता और समता के अधिकार मनुष्य को देता है, तो पूँजीवादी तंत्र जादूगर के अदृश्य हाथ से उन्हीं अधिकारों को एक छाया, एक छलना में बदल देता है ।"[34]

वर्तमान परिदृश्य में लोकतंत्र की हैसियत बस इतनी ही रह गई है कि वह पूँजीवादी तंत्र के इशारों पर बन्दर की तरह नाचती रहती है । पूँजीवादी तंत्र अपनी इच्छानुसार लोकतंत्र की आड़ में राजनीति का अमानवीय खेल खेलता है और बड़ी चालकी से जनता को उनके अधिकारों का लाभ उठाने से वंचित भी कर देता है । इस पूँजीवादी लोकतंत्र में संसद मामलों को 'सुलझाने' की जगह 'उलझाने' वाला स्थान बन चुका है । घटना छोटी हो या बड़ी, सामान्य हो या गम्भीर सभी के प्रति लचर रवैया अपनाया जाता है । संसद में मुद्दों को एक-दूसरे पर छींटाकशी करने और एक-दूसरे की कमी खोजकर अपनी कमी छिपाने के लिए

इस्तेमाल किया जाता है । दुष्यंत इस स्थिति पर लिखते हैं –

" पक्ष और प्रतिपक्ष संसद में मुखर है ।
बात सिर्फ इतनी है कि कोई पुल बना है ।"[35]

कुछ मुद्दें बेहद सम्वेदनशील होते हैं, जैसे-भूख, बेरोजगारी, गरीबी, दलित आदि । इन संवेदनशील मुद्दों का इस्तेमाल राजनीति में बहुत होता है क्योंकि ये मुद्दें सत्ता पलटने की पूरी ताकत रखते हैं । राजनीतिज्ञ जनता के जज्बात और जरूरतों को सत्ता के खेल में मोहरे की तरह इस्तेमाल करते हैं । दुष्यंत लिखते हैं–

" भूख है तो सब्र कर रोटी नहीं तो क्या हुआ ,
आजकल दिल्ली में है जेरे बहस ये मुद्दा ।"[36]

कवि ने राजनीति के हरेक पहलू को व्यंग्य का निशाना बनाया है । उनके राजनीतिक व्यंग्य के अंतर्गत चुनावी माहौल पर भी व्यंग्य मिलता है । चुनाव–पर्व नेताओं के लिए जागरण का सन्देश लेकर आता है । नेताओं की क्रियाशीलता यकायक बढ़ जाती है । संवेदना और सहानुभूति से लबरेज भाषण तैयार होने लगते हैं । नेतागण वातानुकूलित कमरे को छोड़कर झोपड़ी की ओर रूख करते हैं । गरीबों के साथ आत्मीय संबंध स्थापित करने की कोशिश करते हैं । कवि की जनोन्मुख दृष्टि से नेताओं की ये सारी चालबाजियाँ छिपी नहीं है । कवि नेताओं को व्यंग्यात्मक लहजे में 'समझदार लोग' सम्बोधित करते हुए उनकी चालाकियों से जनता को रूबरू करवाते हैं –

" समझदार लोग वे होते हैं
जो सवाल पैदा करते हैं
और उन्हें समाज में बिखरा देते हैं
ताकि लोग सवालों को सेते रहें
लफ्जों पर गर्दन हिलाते रहें
या पुरस्कार देते रहें
यानी इस बहाने लोगों में जरा सनसनी रहे
और यथास्थिति बनी रहे
वे जो चाहते हैं कि उनकी बात मान ली जाए
मुँह में भोंपू लगाकर चिल्लाते हैं
वे जानते हैं जबाव से ज्यादा जरूरी है
प्रचार
सत्य से ज्यादा गहरी है
असत्य की मार "[37]

दुष्यंत कुमार ने अपनी रचनाओं में राजनीतिज्ञों के कथनी और करनी के अंतर की समीक्षा की है । सरकार की कथनी और करनी में धरती और आसमान-सा फर्क होता है । सरकार जो कहती है, वह करती नहीं है और जो करती है, वह कहती नहीं । सरकार अपनी नाकामी को विपक्ष के सिर मढ़कर

केवल अपनी झूठी आत्म-प्रशंसा में व्यस्त रहती है । कवि नेताओं के इस अन्दाज पर लिखते हैं –

" वैसे सरकार कहती है –
विदेशों में हमारी कीर्ति फैली है
देश प्रगति कर रहा है
आदमी अब भूखा नहीं है
कीमतें गिर गई हैं
ये जो सूखा पड़ा है
ये जो कुछ मौतें हुई
इनके पीछे देश के दुश्मनों का
हाथ था
लोग उनसे सावधान रहें
हम चाहते हैं "[38]

ताज्जुब की बात है कि जिस देश में गरीबी और बेरोजगारी के कारण आत्महत्याएँ हो रही हैं, उस देश के उद्धारक झूठी आत्म-प्रशंसा द्वारा जनता को सच्चाई से दूर रखने की कोशिश में लगे हुए हैं । अजय बिसारिया कवि की राजनीतिक समझ पर लिखते हैं –"जिस तरह वे अपने समय के राजनीतिक हालात को उनकी समस्त

जटिलताओं–जिनमें परिस्थितियाँ भी हैं, राजनीतिक चालबाजियाँ भी और उनका भोक्ता आमजन भी को रूपायित करते हैं, वह अद्‌भुत है ।''[39]

समाजवाद लाने का ढ़ोंग रचकर जिस तरह जनता को भरमाया गया, कवि ने उसपर अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की है । तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने जनता को आश्वासन दिया कि समाजवाद द्वारा वे उनकी सारी मूलभूत जरूरतों को पूरा करेंगें । उनकी सारी समस्याएँ मिट जाएगी । समाज से गरीबी और बेरोजगारी खत्म हो जाएगी । अपने उद्धारकों के प्रति नतमस्तक भोली भाली जनता बीस वर्षो तक 'रोटी' के स्थान पर 'थाली में सजी हुए भाषण' और 'प्रेस की कतरनें' श्रद्धापूर्वक खाती रहीं । जनता भुखमरी से मरणासन्न हो गई, पर भूख की शिकायत नहीं की । ऐसी नतमस्तक भोली–भाली जनता के विश्वास पर 'पूँजीवादी समाजवाद' लाकर कुठाराघात किया गया । पूँजीवादी समाजवाद जिसे जनता की भूख, बेबसी, गरीबी, मूलभूत जरूरतों, आशा–आकांक्षाओं से कोई सरोकार नहीं था । आजाद भारत की यह तस्वीर अत्यंत भयावह थीं । जनता के साथ इस तरह का छलावा देखकर जनकवि दुष्यंत का दिमाग भन्नाने लगता है और इस गम में वे गाते-गाते चिल्लाने लगते हैं । इन रहनुमाओं पर कवि की प्रतिक्रिया बेहद तल्ख रूप में प्रकट होती है –

'' तुम्हारा आभारी हूँ रहनुमाओं
तुम्हारी बदौलत मेरा देश ,

यातनाओं से नहीं

फूलमालाओं से दबकर मरा है ।''[40]

एक ऐसा वक्त भी था जब हिन्दुस्तान की सुख, समृद्धि, वैभव, एकता, भाईचारा, त्याग, शांति को देखकर इसे 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था । भारत ज्ञान–विज्ञान, बल–बुद्धि, प्रतिभा, धर्म आदि सभी के लिए विश्व–प्रसिद्ध था । भारत की इस तस्वीर को कतिपय लोगों ने अपनी मदांधता, स्वार्थपरता, सत्ता–लोलुपता, अवसरवादिता के कारण धूमिल कर दिया है । स्थिति इतनी बदतर हो चुकी है कि हिन्दुस्तान अपने 'अस्तित्व को चिथड़े' में बचाए रखने के लिए संघर्षशील है । कवि हिन्दुस्तान की बदहाली को व्यंग्यात्मक तरीके से व्यक्त करते हैं –

'' कल नुमाइश में मिला था, वो चिथड़े पहने हुए,

मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिन्दुस्तान है ।''[41]

अरूण कुमार अपने एक लेख 'हिन्दी गज़ल : एक यात्रा' में दुष्यंत कुमार के राजनीतिक व्यंग्य के बारे में अपना मंतव्य प्रकट करते हुए लिखते हैं – ''दुष्यंत एक संवेदनशील शायर थे । अपने वक्त की पीड़ा से व्यथित उनका मन निरंतर सियासी बाजीगरी के तिलस्म को तोड़ने के लिए कसमसा रहा था । गमे–दौराँ के दर्द को उन्होंनें गमे–जानाँ दर्द बना लिया था । अपनी यातनापूर्ण संत्रस्त मनः पीड़ा को उन्होंने 'कबीर' की तरह ही गज़ल की भाषा में इस तरह से

ठाल दिया है कि वह उनके दौर की असलियत को खोलकर सामने रख देती है ।"[42]

समग्रतः दुष्यंत कुमार के काव्य में राजनीतिक व्यंग्य की बहुलता है । राजनीति का प्रत्येक सूक्ष्म पहलू उनके काव्य में चित्रित है । स्वतंत्रता पश्चात् की राजनीतिक चित्रों के अलावा आपातकालीन स्थितियों पर कवि का प्रहार देखते ही बनता हैं । राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त प्रत्येक जनविरोधी क्रिया पर कवि की तीखी प्रतिक्रिया रही है । यह प्रतिक्रिया कहीं मौन है तो कहीं मुखर, पर धारदार और तिलमिला देनेवाला है ।

4. सांस्कृतिक व्यंग्य

दुष्यंत कुमार ने अपनी रचनाओं में समसामयिक राजनीतिक विसंगतियों और विडंबनाओं को ही व्यंग्य का निशाना नहीं बनाया है, समसामयिक सांस्कृतिक क्षरण पर भी प्रहार किया है । स्वातंत्र्योत्तर पूँजीवादी संस्कृति ने अपने विकास के साथ भारतीय संस्कृति पर हमला करना शुरू कर दिया । मूल्य बदल गये, मान्यताएँ बदल गयी । रिश्ते-नाते, बाजार, घर सभी को पूँजी की कसौटी पर परखा जाने लगा । 'पर' की भावना विलुप्त होने लगी और 'स्व' की भावना का वर्चस्व बढ़ने लगा । प्रेम, अहिंसा, त्याग, साझेदारी जैसे मूल्य दम तोड़ने की स्थिति में पहुँच गये । समाज गहन सांस्कृतिक विघटन के दौर से गुजर रहा था । पूँजीवादी

सभ्यता मनुष्य को मशीन के रूप में परिवर्तित करने पर उतारू थीं । मशीन की ही तरह मनुष्य भी संवेदनशून्य होता जा रहा था । स्वातंत्र्योत्तर पूँजीवादी संस्कृति के वर्चस्व से भारतीय संस्कृति का जो अवमूल्यन हो रहा था, उसे कवि दुष्यंत की कविताओं में जगह–जगह देखा जा सकता है ।

दुष्यंत कुमार एक चेतना सम्पन्न सृजनकार है । भारतीय संस्कृति और सभ्यता से उन्हें गहन लगाव है । यही वजह है कि मूल्य-विघटन और संवेदनहीनता का शिकार स्वातंत्र्योत्तर सांस्कृतिक परिवेश उन्हें आहत करता है । समाज का बहुसख्यंक वर्ग (किसान, मजदूर) जहाँ दिन–रात एक करके अपने लिए, अपने परिवार के लिए दो वक्त की रोटी जुटाने में असमर्थ दिख रहा है, वहीं अल्पसख्यंक वर्ग (नेता, पूँजीपति) रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी जरूरतों से आगे बढ़कर भौतिक सुख–सुविधाओं का उपभोग करने के लिए तत्पर हैं । अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए यह वर्ग दूसरों की बेबसी और लाचारी का बेजा फायदा उठाता है । दूसरों को 'जरिया' बनाकर अपनी मंशा पूरी करते हुए इस वर्ग को तनिक भी झिझक नहीं होती है । कवि ऐसे मौकापरस्त संस्कृति से चिढ़ते हैं । मौकापरस्त संस्कृति के पोषक लोगों पर कवि लिखते हैं–

" मेरे दोस्त मैं तुम्हें खूब जानता हूँ
तुम टी0 टी0 नगर के एक बंगले में
सुख और सुविधा का जीवन

बिताने की कल्पना किये हो
तुम शासन की कुर्सी पर बैठे हुए
अपने हाथों में मुझे एक ढेले की तरह लिए हो
और बर्र के छत्तों में फेंक कर मुझे
मुस्करा सकते हो
मेरी पहुँच से बहुत दूर जा सकते हो ।''[43]

दुष्यंत कुमार की एक कविता है –'महत्वाकांक्षी'। यह कविता सांस्कृतिक अवमूल्यन को विराट् रूप में दर्शाती है । महत्वकांक्षाएँ मनुष्य के ऊपर इतनी हावी हो गई हैं कि मनुष्य उसके सामने बेबस और लाचार नजर आता है । महत्वकांक्षा मनुष्य को घसीटती हुई अंजान पथ पर ले जाती है, फिर भी वह उससे अपने को मुक्त नहीं कर पाता है । वह हमेशा मृग बनकर उसी महत्वकांक्षा रूपी मरीचिका के पीछे भागता रहता है । महत्वकांक्षाएँ मनुष्य के सतीत्व अर्थात् मूल्यों को भंग करने पर आमादा है, फिर भी मनुष्य अंधा, बहरा और गूंगा बना हुआ है । स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक परिवेश से पनपी इस संस्कृति में मनुष्य के लिए उसकी महत्वकांक्षा ही सर्वोपरि है । अपनी महत्वकांक्षा की पूर्ति के लिए वह अपने 'जमीर' तक को बेचने के लिए बेझिझक तैयार हैं । ऐसे महत्वकांक्षी मनुष्यों पर कवि का तीखा वार पड़ता है –

'' उसने जमीर बेच दिया है तो शक नहीं

वो शख्स कामयाब हुआ चाहता है अब ।''[44]

कवि जिस समय लिख रहे थे, उस समय उन्होंने छोटी–छोटी बातों में लोगों को प्रतिस्पर्धा करते हुए पाया । चतुर्दिक उन्हें एक-दूसरे को कुचलकर आगे बढ़ने वाले लोग दिखाई पड़े । आत्मीयता, सम्मान, सहयोग जैसी कोमल भावनाएँ विलुप्त होने लगी । इंसान-इंसान के मध्य एक बड़ी दरार नजर आने लगी । इस नैतिक अवमूल्यन को कवि 'एक सफर पर' जाते हुए बड़ी गहनता के साथ महसूस करते हैं –

'' बहुत बुरी हालत है , डिब्बे में
बैठे हुओं को
हर खड़ा हुआ व्यक्ति शत्रु
खड़े हुओं को बैठा हुआ बुरा लगता है
पीठ टेक लेने पर
मेरे भी मन में
ठीक यही भाव जगता है
मैं भी धक्कम-धू में
हर आने वाले को
क्रोध से निहारता हूँ
सहसा एक और अजबनी के बढ़ जाने पर

उठकर ललकारता हूँ ।''[45]

इस सांस्कृतिक अवमूल्यन की ही भयावह परिणति है – सम्वेदनहीनता । 'निजस्व' के वर्चस्व ने मनुष्य को इस कदर आत्मकेंद्रित बना दिया है कि अपने आसपास की घटनाओं से उसकी संवेदना तनिक भी आंदोलित नहीं हो रही । कवि इस स्थिति पर लिखते हैं –

'' हो कोई बारात या कि वारदात ,

अब किसी भी बात पर खुलती नहीं है खिड़कियाँ ।''[46]

कवि का यह व्यंग्य अत्यंत मार्मिक है । स्थिति अत्यंत चिंताजनक हो गई है । खिड़कियाँ अगर इसी तरह बन्द रही तो सामाजिकता जैसी भावना हाशिये पर आ जाएगी । मनुष्य जिसे 'सामाजिक' भी कहा जाता है, यह विशेषण उससे छिन जाएगा । भारतीय संस्कृति के प्रवक्ता रामधारी सिंह 'दिनकर' अपनी प्रसिद्ध रचना 'कुरूक्षेत्र' के छठे सर्ग में हृदय प्रदेश की इसी शून्यता को लेकर चिंतित दिखलाई पड़ते हैं । भावनाएँ मनुष्य की बहुत बड़ी जरूरत है । जिज्ञासा, कौतुहलता आदि मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है । अंधी आधुनिकता की चपेट में आकर मानव इन सहजावृत्तियों को 'बेवकूफी' मानने लगा है । समाज में विस्तार पा रही इस नई तरह की तहजीब ने संबंधों की उष्मा को भी ठण्डा कर दिया है । स्वार्थ की अंधी दौड़ में महत्त्वकांक्षा की पूर्ति करते समय माँ–बाप 'अवांछित समान' और उनके द्वारा प्रदत्त 'नैतिक मूल्य और संस्कार', 'अवांछित ज्ञान' हो गये हैं । कवि इस

उपयोगितावादी भ्रष्ट संस्कृति की विसंगति पर करारा प्रहार करते हैं –

" ऊपर उठने का हो इरादा गर पक्का
तो दो माँ-बाप को कुएँ में धक्का
उगनेवाली इस तहजीब के करिश्मे
जग देखे होकर इकदम हक्का बक्का "[47]

कितना बड़ा अंतर्विरोध है, जो भारत देश श्रवण कुमार जैसे मातृ–पितृ भक्त बेटा पाकर धन्य हुआ, वही आज तथाकथित श्रवण कुमारों जो अपने जन्मदाता का अपमान और उपेक्षा करने में अपनी शान समझते हैं, को पाकर विलख रही है ।

दुष्यंत कुमार किसानी संस्कृति के पोषक है । किसानी संवेदना उनमें कूट–कूट कर भरी हुई है । सृजन कार्य से समय निकालकर वे किसानी जीवन जीने के लिए गाँव चले जाते थें । गाँव की गवँई संस्कृति उन्हें लुभाती थी । ग्रामीणों की सहजता, सरलता और भोलापन उन्हें आकर्षित करता है । पूँजीवादी संस्कृति के कुप्रभाव से अब गाँव भी बदल गये हैं । गाँव के संबंध में जो पारम्परिक अवधारणा थी, वह खत्म हो चुकी है । गाँव भी धीरे-धीरे शहर की विकृतियों को ग्रहण करते जा रहे हैं । आत्मीयता, सहजता, सरलता, स्वाभाविकता, नैसर्गिकता जो गाँव की विशिष्ट पहचान हुआ करती थी, अब वह लुप्त हो चुकी है । वहाँ के रीति-रिवाज, खान-पान, व्यवहार, आदर-सत्कार में परिवर्तन आ गया है । गर्मजोशी के साथ आगंतुकों का स्वागत करने लिए अब कोई नहीं आता । यहाँ

तक कि किसी को प्यासा पाकर लोटे में पानी पिलाने के लिए महरियाँ भी नहीं आती है । ग्राम्य जीवन के इस बदलाव पर कवि ने लिखा है –

" ओसारों में बैठे हुए बुढ़े बर्राते हैं ,
लोटे में जल भरकर महरियाँ नहीं आती
स्वागत नहीं करते बच्चे–राहगीरों पर
कुत्ते लहकाते हैं ।
इस ठहरी और सड़ी हुई गरमी में
कहीं भी पड़ाव नहीं मिलते
अँधेरे में दिखते नहीं दूर तक चिराग !
थके हुए पाँवों के जख्म
जलती हुई रेत में सुस्ताते हैं ।
यक–ब–यक तेजी से बदल गए हैं
गाँवों के पनघट और सुन्दरियों की तरह
– सारे, रिवाज "[48]

निर्मल वर्मा के विचारों को इस सन्दर्भ में देखा जा सकता है –"अपने परिवेश से सहज लगाव जो एक भारतीय स्वाभाविक रूप से महसूस करता था– अपनी प्रकृति से लगाव, अपने परिवेश से सजग, पारम्परिक संबंध–आज वह बहुत कुछ विश्रृंखलित हो चुका है ।"[49] ग्राम जीवन में भी संवेदनात्मक संबंध हाशिये पर आ

चुके हैं । वहाँ भी सांस्कृतिक विघटन व्यापक पैमाने पर जारी है ।

विज्ञापन भी सांस्कृतिक विघटन के लिए जिम्मेवार है, ऐसा कवि का मानना है । उन्होंने विज्ञापन संस्कृति पर करारा प्रहार किया है । विज्ञापन के माध्यम से सच को झूठ और झूठ को सच बनाने की प्रक्रिया निरंतर जारी है । घर की दिवारों पर बड़े–बड़े लुभावने पोस्टर चिपकाकर उसमें आई दरार की सच्चाई को सहजता से छिपा दिया जा रहा है । सच से लोगों का ध्यान भटकाने के लिए विज्ञापन का बखूबी इस्तेमाल करनेवालों पर कवि का व्यंग्य देखते ही बनता है –

" अब किसी को भी नजर आती नहीं कोई दरार ,
घर की हर दीवार पर चिपके हैं इतने इश्तहार ।"[50]

कवि इस नए युग के अवतरण से अनिर्णय की स्थिति में है । उसे समझ नहीं आ रहा है कि क्या होगा । इस युग में सभी कुछ बदल गया है ।'यहाँ सब पड़ाव/ वर्तमान शंकाओं/ संदेहों/ आग्रहों–दुराग्रहों के चश्मों में/ सहज–सुलभ दृश्यों की तरह झिलमिलाते हुए/ लटके हैं'[51] । अतीत और आगत के मध्य एक बड़ा फासला है । नैतिक मूल्यों का क्षय हो रहा है । मनुष्य की असीमित भौतिक इच्छाओं ने शून्य की ऐसी अकल्पनीय स्थितियाँ पैदा कर दी है कि जीवन के सारे परम्परागत मूल्य बदल गये हैं और मनुष्य इसके अभाव में असहाय, दीन और विकल्पहीन होकर भकट रहा है --

" साक्षी है युग जिसमें

सिर्फ पाँवों तले की जमीन ही नहीं

बल्कि जीवन के मूल्य , तत्त्व , बदल गए ,

बदल गए –

महाकार पर्वत, मरूस्थलों में

समतल मैदानों में

जल के उद्दाम वेग

कल–कारखानों में ,

तीर्थ स्थल, मन्दिर और मस्जिद, मैखानों में,

दर्द, कामनाओं में,

मूल्य, भावनाओं में,

मानवीय संस्कार सामयिक विचारों में ,

आस्था, प्रतीक्षा में अवसर की,

बदल गई सारी परिभाषाएँ ईश्वर की !''[52]

दुष्यंत कुमार व्यापक दृष्टि सम्पन्न है । विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में व्याप्त व्यवसायिक संस्कृति के दुष्परिणाम को कवि ने अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है । इन जगहों पर भी व्यवसायिक संस्कृति के प्रभाव पड़ चुका है । गुरू-शिष्य संबंध विश्रृंखल होते जा रहे हैं । शिक्षा-दान, जिसे भक्तिकालीन कवि कबीर ने सर्वश्रेष्ठ दान बताया है, आज अर्थ-केंद्रित होते जा रहे

हैं । 'पढ़ने-पढ़ाने' की भावना भी परिवर्तित हो चुकी है । कवि 'प्रेम कविता' शीर्षक कविता में घटाओं को सम्बोधित करते हुए इस परिवर्तित गुरू-शिष्य संबंध पर व्यंग्य करते हैं । कवि घटाओं से कहते हैं –

" अलबत्ता अध्यापक विद्यार्थी तुमको रोकेंगे
पढ़ने–पढ़ाने से ये जी चुराते हैं
वे तुम्हें उपेक्षा से हिकारत से देखेंगे
यही दृष्टिकोण है इस युग का "[53]

निष्कर्षत: हम पाते हैं कि दुष्यंत कुमार के काव्य में सांस्कृतिक व्यंग्य बहुलता से उपलब्ध है । कवि ने सांस्कृतिक क्षरण को केवल अनावृत्त ही नहीं किया है, बल्कि उन परिस्थितियों पर भी गहन विचार किया है, जिसकी वजह से हमारी संस्कृति अपदस्थ हुई है । स्वातंत्र्योत्तर परिस्थितियों ने मानव को अतिशय महत्त्वकांक्षी बनाया । आजादी की लड़ाई जो आरम्भ में अपने अस्तित्व, अपनी अस्मिता, अपनी पहचान की लड़ाई थी, कालांतर में सत्ता पर काबिज होकर अपने स्वार्थ को पूरा करने की लड़ाई बन गई । जिसके लिए नैतिक और मानवीय मूल्यों से सहज समझौता कर लिया गया । कवि मानते हैं कि अपनी सभ्यता और संस्कृति से पृथक होकर भले ही मानव अपने स्वार्थ को पूरा कर ले, किंतु मानवीय मूल्यों से पृथक हमारी कोई पहचान नहीं है । इसके बिना हम कृत्रिम और कमजोर है ।

5. साहित्यिक व्यंग्य

दुष्यंत कुमार के काव्य में हमें तत्कालीन साहित्यिक छद्मता पर भी व्यंग्य मिलता है । दुष्यंत के रचनाकाल में सप्तकीय कवियों की धूम मची हुई थी । ये कवि प्रयोग और नवीनता के नाम पर कोरी बौद्धिकता और कुंठा को सृजित कर रहे थें । कविता को कलात्मक उत्कर्ष से सुसज्जित करके प्रस्तुत किया जा रहा था । समाज से कविता का आंतरिक संबंध विछिन्न हो रहा था । दुष्यंत के लिए साहित्य की यह दुर्दशा असहनीय थी । ख्याति पाने के लिए कविगण रीतिकालीन कवियों की भाँति अपनी लेखनी से सहर्ष समझौता कर रहे थें । कुछ ऐसे भी रचनाकार थे जो यथार्थ के नाम पर घृणित यथार्थ को चित्रित कर स्वयं को महान् कवि मान रहे थें । कतिपय रचनाकारों को छोड़कर बाकी का जन-जीवन से कोई सरोकार नहीं था । कहा जा सकता है कि नयेपन और यथार्थ के नाम पर रचनाकार उस समय साहित्य में सड़ाध पैदा कर रहे थें । साहित्यिक प्रदेश प्रदूषित हो चुका था । साहित्यिक वैभव भी नष्ट हो रहा था। दुष्यंत कुमार ने ऐसे साहित्यिक परिवेश में साहित्य-सृजन की सार्थकता से अपने समसामयिक रचनाकारों को परिचित कराया । उन्होंने अपनी समाज–सम्बद्ध कृतियों के माध्यम से साहित्यिक गरिमा को पुनर्जीवित किया । कवि लिखते हैं –'' मैं बराबर महसूस करता हूँ कि कविता में आधुनिकता का छद्म कविता को बराबर पाठकों से दूर करता गया है । कविता और पाठक के बीच इतना फासला कभी नहीं था, जितना आज है । इससे भी

ज्यादा दु:खद बात यह है कि कविता शनै:-शनै: अपनी पहचान और कवि अपनी शख्सियत खोता गया है । ऐसा लगता है, गोया दो दर्जन कवि एक ही शैली और शब्दावली में एक ही कविता लिख रहे हैं । इस कविता के बारे में कहा जाता है कि यह सामाजिक और राजनीतिक क्रांति की भूमिका है और यह दलील खोटी है । जो कविता लोगों तक पहुँचती नहीं, उनके गले नहीं उतरती, वह किसी भी क्रांति की संवाहिका कैसे हो सकती है ।''[54] इस कथन से स्पष्ट है कि कवि ने उसी कविता को महत्त्व दिया है जो जन के बीच से निकलकर जन के लिए हो । साहित्यिक पाखंड और विसंगतियों पर कवि ने अपनी अनगिणत रचनाओं में आक्रोश जाहिर किया है । साहित्य को जीवन के विविध अनुभवों का संचयन माना जाता है । इन जीवनानुभवों के लिए साहित्यकार का जीवन के बीच जाना आवश्यक होता है ताकि उसके अनुभव प्रामाणिक हो जाए । कोरी कल्पना से सृजित साहित्य जीवन का सटीक चित्र उपस्थित करने में असमर्थ होता है । मौलिकता का दंभ भरकर कोरी कल्पना के सहारे साहित्य रचना करनेवालों पर कवि कटाक्ष करते हैं –

'' खंड–खंड होकर जिसने
जीवन–विष पिया नहीं
सुखमय, सम्पन्न मर गया, जो जग में आकर
रिस–रिसकर जिया नहीं,

उसकी मौलिकता का दंभ निरा मिथ्या है

निष्फल सारा कृतित्व

उसने कुछ किया नहीं "[55]

वास्तव में जीवन संघर्ष से प्राप्त कटु-तिक्त और मधुर अनुभव ही शाश्वत होते हैं। 'जीवन-विष' को पीनेवाला ही सार्थक और मौलिक रचना दे सकता है। यही मौलिकता रचना को जन से जोड़ती है। दुष्यंत मानते हैं कि कवि और जन की सत्ता एक-दूसरे से पृथक नहीं होती है, जन ही विविध रूप धरकर उनकी रचनाओं में प्रतिफलित होता है। दुष्यंत की सृजनात्मकता सामान्यजन को पाकर ही पूर्णत्व प्राप्त करती है –

" प्राणहीन है वैसे मेरा तन

तुमको ही पाकर पूर्णत्व प्राप्त करता है

मुझको पहचानो तुम

पृथक नहीं सत्ता है।"[56]

प्रेमशंकर लिखते हैं –"अनुभव की रचनाशीलता में रूपांतरित करते हुए रचना जिस द्वंद्व से गुजरती है, उस दर्द को दुष्यंत ने जाना है। उनमें यह अहसास मौजूद है कि रचना में सिर्फ मुखौटों से काम नहीं चल सकता।

दुष्यंत ने जिस समय अपनी रचनायात्रा का आरम्भ किया आधुनिक और नयेपन का जोर था। ऐसे में उनकी रचनाएँ नयेपन के फैशन को देखते हुए

कुछ पिछड़ी हुई तक कही जा सकती है ।.....हर समझदार लेखक बखूबी जानता है कि सिर्फ फैशन के सहारे वह आगे नहीं जा सकता ।''[57]

दुष्यंत ऐसे कवि रहे हैं जिन्होंने अपने व्यापक अनुभव संसार को रचना में सृजित करते हुए, उसके मानवीय सरोकार को भी दृष्टि में रखा है । अत: फैशन के लिए उनके संवेदन संसार में कोई स्थान नहीं है । बुद्धिरस वाली नई कविता धारा के विरूद्ध टिप्पणी रूप में लिखी गई कविता 'प्रतिकुल राह' में समसामयिक साहित्यिक परिवेश को व्यापक रूप में देखा जा सकता है । सहज शैली में लिखी गई यह कविता पुरस्कार पानेवाले बड़े–बड़े साहित्यकारों की वास्तविकता को उजागर करते हुए पुरस्कार वितरण प्रणाली की विसंगतियों पर प्रहार करती है –

'' पुस्तकें मेरी छपीं
आलोचना निकलीं
मिला सम्मान, मुझको
गीत गाए स्वर बदलकर सौ तरह के
रंग जमाने के लिए साहित्य में
मैंने अनेकों कष्ट झेले
और तब जाकर कहीं पे
आज सब कुछ है

साँस गति से चल रही है
चैन से घर बैठ रोटी मिल रही है
अब नहीं चुभते मलय के वाण
तारे अब न मेरी नींद करते भंग
चारों ओर है साहित्य छाया ''[58]

कवि को जिस कृति पर सम्मान, ऐशो-आराम और भोजन मिला, वह कृति 'कवि के भाव, गीत, कवि की साधनाओं के अनुकुल नहीं था ये सारे पेंग थे, इसमें हृदय का सत्व और मनुष्यत्व भी नहीं था । फिर भी कवि की वह रचना तहलका मचाती है । इस कविता के द्वारा कवि ने साहित्यिक समाज की विद्रूपताओं पर चोटिला व्यंग्य किया है । साहित्यिक समाज की विडंबना यही है –

'' जो बेसुरे हैं वो मजमों के बीच जीते हैं
जो साज सुर में हैं उनकी कोई समात नहीं ।''[59]

साहित्यिक सम्मेलनों की सच्चाई को दुष्यंत कुमार की 'मित्र को एक पत्र' कविता में देखा जा सकता है । इन सम्मेलनों में साहित्य का सच नहीं दिखता, केवल झूठ, पाखंड, दिखावा, चापलूसी, अवसरवादिता ही दिखाई पड़ती है । ऐसे समारोह में साहित्य का सत्य कहीं दब जाता है । निकृष्ट लिखकर भी रचनाकार वाह–वाही और पुरस्कार पा लेता है । इतना ही नहीं, ऐसी रचनाओं को प्रकाशक भी सहज मिल जाते हैं । इन सभाओं की एक और तल्ख सच्चाई यह है

कि कुछ रचनाकारों की धूल पड़ी रचनाएँ चापलूसी के कारण 'बेस्ट सेलर' का खिताब पा लेती है । सच तो यह है कि इस तरह के साहित्यिक सम्मेलनों में साहित्यिक सरोकार कम और व्यक्तिगत सरोकार अधिक दिखता है । इन सम्मेलन के आयोजकों को भी खूब व्यक्तिगत लाभ मिलता है, भले ही आयोजन का वास्तविक उद्देश्य गर्त में ही क्यों न चला जाए । कुल मिलाकर इन सभाओं में साहित्यिक छद्मता ही दिखाई पड़ती है । 'मित्र को एक पत्र' कविता में मित्र को व्यंग्य का केंद्र बनाते हुए साहित्य–संसार की इस तल्ख सच्चाई पर प्रकाश डालते हैं –

" और जो आए उन्हें
बुलाकर क्या फल पाया
कौन समस्या सुलझी
कितने मतवादों की बाढ़ हट गई
कितने भूखों को मिल गये
अन्न के दाने
कितने नंगों के शरीर पर वस्त्र आ गए
कितने नेताओं के आडंबर टूटे
कितने जीवन
जीने की यंत्रणा-व्यथा से त्राण पा गए

X X X

तीन दिन काफी रौनक रही

नई मित्रता हो गई

नए मित्र मिल गये

बहुत पुरानी कुछ रचनाएँ चल जाएँगी

कई नए सम्पादक

उलझा लिए जाल में "[60]

जीवन यथार्थ को चित्रित करने वाले कवि दुष्यंत को अपने समकालीनों की काल्पनिक उड़ान अतिरेक लगती है । वे 'चाँद' को केंद्रित करके अपने समकालीन कवियों की काल्पनिक उड़ान पर व्यंग्य करते हैं –

" पर आज के कवियों के चाँद

उनके आँगन की नीम पर बैठा रहता है

कहते हैं पत्तियों के जाल में उलझ गया है ।

क्यों जी ! क्या ऐसा भी सम्भव है ।"[61]

दुष्यंत मानते हैं कि कवि का असली धर्म 'जागरण और जन-उन्मेष' होता है । इसीलिए कवि को अपने धर्म से विमुख होकर काव्य-सृजन नहीं करना चाहिए । युगीन परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर लिखी गई कविता ही सार्थक होती है । कवि अपने समकालीन जन-निरपेक्ष कवियों पर व्यंग्य वाण खींचते हुए अपनी

जन-पक्षधरता को जाहिर करते हैं –

" मुझसे पूछ रहे हो – 'ओ कवि !
हरसिंगार के फूल क्या हुए
और क्या हुआ मधु गीतों को ?
मेरा उत्तर है कि – बंधुओं !
तृप्ति नहीं दी जा सकती है
प्रणय-गीत गा-गाकर इन भूखों-रीतों को ।"[62]

दुष्यंत की व्यंग्यात्मकता के बारे में मधु खराटे लिखते हैं –"व्यंग्य-विनोद में तो दुष्यंत कुमार काफी सिद्धहस्त थे । उनके व्यंग्य व्यथा से परिपूर्ण हुआ करते थे । यह व्यथा व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि की अधिक रहती थी ।"[63]

अस्तु, यह कहा जा सकता है कि युग जीवन जब विषण्ण और निर्जीव हो गया हो तब प्रेम गीत गाकर इसे बदला नहीं जा सकता । जिसके बारे में कविता लिखी जाती है, उसके साथ हृदयस्थ संबंध स्थापित करना जरूरी होता है । कवि का मानना था कि आयातित आधुनिकता को अपनाकर हम जनोन्मुख और जन–प्रतिबद्ध साहित्य नहीं लिख सकते । शब्दों को जोड़ देने मात्र से ही कविता निर्मित नहीं हो जाती । सच्ची कविता संघर्ष से सृजित होती है, जन के साथ हृदयस्थ तादात्म्य स्थापित करने से होती है । दुष्यंत कुमार की रचनाओं में साहित्य संसार का कटु यथार्थ चित्रित हुआ है । साहित्य जगत के मुखौटे को उघारने में

कवि सफल रहे हैं ।

निष्कर्षत: कवि दुष्यंत कुमार का व्यंग्य धारदार और सार्थक बन पड़ा है । व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को अनावृत कर, कवि हमें समसामयिक परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों से ही परिचित नहीं कराते, अपितु भविष्य के लिए भी दूरदृष्टि प्रदान करते हैं । सामान्यजन के लिए एक बेहतर भविष्य और मूलभूत जरूरतों की पूर्णता, प्रत्येक जनकवि का सपना रहा है । कवि दुष्यंत कुमार का भी सपना है कि समाज से विषमता और विसंगतियों का अस्तित्व मिट जाए तथा प्रत्येक व्यक्ति एक सुखद जीवन का उपभोग करें । उनका व्यंग्य इसी कामना को पूर्ण करने के लिए प्रतिबद्ध हैं । कवि दुष्यंत कुमार का व्यंग्य केवल राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक विसंगति और विद्रूपताओं को अनावृत ही नहीं करती, हमें जगाकर समाज के नवनिर्माण हेतु प्रेरित भी करती है । सार्थक व्यंग्य के कारण, कवि की रचनाएँ अपनी सामाजिक उपयोगिता की कसौटी पर पूरी तरह से खरी उतरती है । व्यंग्य के तीखे धार द्वारा सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने में कवि पूरी तरह से सक्षम हुए हैं ।

सन्दर्भ-सूची

01. उद्धृत, व्यास मदालसा, हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1999, पृष्ठ संख्या – 01

02. द्विवेदी हज़ारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दसवी. आवृत्ति 2003, पृष्ठ संख्या – 131

03. https://sites.google.com/site/hindiebooks, Harishankar Parsai ki Vyangya Rachnayen, accessed on 31 Aug 2012 at 8:45

04. महतो भवेश कुमार, सम्पादक – प्रेम जनमेजय, व्यंग्य वार्ता (पत्रिका), अंक–29, अक्टूबर – दिसम्बर, 2011, पृष्ठ संख्या – 36

05. उद्धृत –शर्मा प्रो. राधेमोहन, हरिशंकर परसाई : व्यंग्य की वैचारिक पृष्ठभूमि, भूमिका प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति, 1999, पृष्ठ संख्या – 16

06. कुमार सुवास, गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृष्ठ संख्या – 96

07. उद्धृत, व्यास मदालस, हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1999, पृष्ठ संख्या – 01

08. उद्धृत, व्यास मदालसा, हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1999, पृष्ठ संख्या – 02

09. उद्धृत, व्यास मदालसा, हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1999, पृष्ठ संख्या – 02

10. सं.– विजय बहादुर सिंह, वागर्थ (पत्रिका), अंक – 163, फरवरी 2009,पृष्ठ संख्या – 19

11. व्यास मदालसा , हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई , विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1999, पृष्ठ संख्या – 03

12. कुमार सुवास, गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृष्ठ संख्या – 96

13. शर्मा प्रो. राधेमोहन, हरिशंकर परसाई : व्यंग्य की वैचारिक पृष्ठभूमि, भूमिका प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति, 1999, पृष्ठ संख्या – 09

14. नागर सूर्यकांत, सं. – प्रेम जनमेजय, व्यंग्य वार्ता (पत्रिका), अंक – 29, अक्टूबर–दिसम्बर, 2011, पृष्ठ संख्या – 44

15. चिपलूणकर डॉ. स्मिता, हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकार, अलका प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2001, पृष्ठ संख्या – 21

16. सं. – विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 146

17. वही, पृष्ठ संख्या – 140

18. वही, पृष्ठ संख्या – 288

19. वही, पृष्ठ संख्या – 288

20. वही, पृष्ठ संख्या – 240

21. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2007, पृष्ठ संख्या – 103

22. वही, पृष्ठ संख्या – 155

23. सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2007, पृष्ठ संख्या – 262

24. वही, पृष्ठ संख्या – 288

25. वही, पृष्ठ संख्या – 291

26. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 281

27. वही, पृष्ठ संख्या – 288

28. वही, पृष्ठ संख्या – 291

29. वही, पृष्ठ संख्या – 291

30. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 121

31 सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 284

32. वही, पृष्ठ संख्या – 291

33. वही, पृष्ठ संख्या – 280

34. वर्मा निर्मल, शताब्दी के ढलते वर्षों में, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, चौथा संस्करण, 2006, पृष्ठ संख्या – 180

35. सं. – विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 284

36. वही, पृष्ठ संख्या – 266

37. वही, पृष्ठ संख्या – 212

38. वही, पृष्ठ संख्या – 212

39. सं.- कुँवरपाल सिंह और नमिता सिंह, वर्तमान साहित्य (पत्रिका), अंक–दिसम्बर, 2008 (दुष्यंत कुमार पर विशेष), पृष्ठ संख्या – 05

40. सं. – विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली , द्वितीय संस्करण 2007 , पृष्ठ संख्या – 183

41. वही, पृष्ठ संख्या – 288

42. सं.– त्रिभुवन सिंह और विजयबहादुर सिंह, साहित्यिक निबंध, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ संख्या – 101

43. सं. – विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 160

44. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली , द्वितीय संस्करण 2007 , पृष्ठ संख्या – 250

45. सं. – विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2007, पृष्ठ संख्या – 151

46. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 266

47. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 286

48. सं.- विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या–144

49. वर्मा निर्मल, शताब्दी के ढलते वर्षों में, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, चौथा संस्करण, 2006 , पृष्ठ संख्या – 217

50. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 291

51. वही, पृष्ठ संख्या –181

52. वही, पृष्ठ संख्या –181

53. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 289

54. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 238

55. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 291

56. वही, पृष्ठ संख्या – 355

57. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 127

58. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 267

59. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 241

60. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 402

61. वही, पृष्ठ संख्या – 270

62. वही, पृष्ठ संख्या – 385

63. खराटे मधु, हिन्दी गज़ल के प्रमुख हस्ताक्षर, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 1994, पृष्ठ संख्या – 10